दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

<u>सि.वि.(मु.) सं.1371/2008 और सि.वि.आ. सं.17532/2008</u>

<u>02.03.2010</u>

अरुण कुमार टंडन ..... याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री नवीन कुमार, अधिवक्ता।

बनाम

मैसर्स आकाश टेलीकॉम प्राइवेट लिमिटेड और अन्य ..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: श्री राजीव दुग्गल, अधिवक्ता।

आरक्षण तिथिः17 फरवरी, 2010

आदेश तिथिः02 मार्च, 2010

न्यायमूर्ति शिव नारायण धींगरा

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? हाँ.
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नहीं? हाँ.
3. क्या निर्णय की सूचना डाइजेस्ट में दी जानी चाहिए? हाँ.

<u>निर्णय</u>

1. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने 24 जुलाई, 2008 को विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश द्वारा पारित एक आदेश पर हमला किया, जिसमें

याचिकाकर्ता द्वारा विद्वान सिविल न्यायाधीश के 3 जनवरी, 2008 के आदेश के विरुद्ध दायर एक अपील को खारिज कर दिया गया था।

2. इस याचिका पर निर्णय लेने के उद्देश्य से प्रासंगिक संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता एक फ्लैट धारण सं.3473, सेक्टर-डी, पॉकेट-III, भूतल, वसंत कुंज, नई दिल्ली का स्वामी है। उसने इस फ्लैट को मैसर्स आकाश टेलीकॉम प्राइवेट लिमिटेड को आवासीय उद्देश्य हेतु किराए पर दिया और इस फ्लैट पर मैसर्स आकाश टेलीकॉम प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक, प्रत्यर्थी स. 2, श्री शिव राज का कब्जा था। फ्लैट को 10 मई, 2003 के एक लिखित समझौते के तहत 11 महीने की अवधि के लिए पट्टे पर दिया गया था। समझौते के अनुसार फ्लैट का किराया बिजली और पानी के शुल्क को छोड़कर 9,500 रुपये था और एक अलग समझौते के अनुसार किराए के अलावा, किरायेदार रखरखाव शुल्क के रूप में प्रति माह 4,000 रुपये का भुगतान करने के लिए सहमत हुआ था। इस प्रकार, फ्लैट के उपयोग और कब्जे के लिए कुल देय राशि 13,500/- रुपये प्रति माह थी। चूंकि अभिधृति(किरायेदारी) 11 महीने की अवधि के लिए थी, इसलिए अभिधृति(किरायेदारी) की अवधि 14 अप्रैल, 2004 को समाप्त हो गई। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थियों से अभिधारित(किराए पर लिए गए) परिसर पर कब्जे हेतु वाद दायर किया। प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया बचाव यह था कि याचिकाकर्ता को 39,000/-रुपए की अग्रिम सुरक्षा राशि प्रदान की गई थी। चूंकि याचिकाकर्ता

39,000/- रुपए की प्रतिभूति जमा राशि को वापस करने की स्थिति में नहीं था, इसलिए याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी सं. 2 के साथ "विक्रय करने का समझौता" किया और 39,000/- रुपए की राशि को आंशिक विक्रय विचार हेतु समायोजित किया गया। 25 अप्रैल, 2004 को याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी सं. 2, अर्थात् श्री शिव राज के बीच विक्रय हेतु समझौता किया गया था और याचिकाकर्ता को 35 लाख रुपये के कुल विचार के विरुद्ध आंशिक विचार के रूप में 4,50,000 रुपये की राशि प्राप्त हुई और प्रतिवादी सं. 2 को सौदे को अंतिम रूप दिए जाने तक वाद संपत्ति का कब्जा जारी रखने की अनुमति दी गई थी इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी सं. 2 के पास संपत्ति का कब्जा था और वह कब्जा देने या किराया देने के लिए उत्तरदायी नहीं था। प्रत्युत्तर में वादी ने परिसर को विक्रय के समझौते के निष्पादन से इंकार किया और प्रस्तुत किया कि फ्लैट का बाजार मूल्य 75 लाख रुपये था। वह इसे 35 लाख रुपये में बेचने के लिए उन्मत्त नहीं हुआ था। उसने कहा कि प्रतिवादी द्वारा जिस दस्तावेज़ पर भरोसा किया गया था, वह "विक्रय का समझौता" एक कूटरचित दस्तावेज था। वादी ने आदेश 39 नियम 10 सि.प्र.स. के साथ पठित धारा 151 सि.प्र.स. के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें न्यायालय से प्रतिवादी को 16 अगस्त, 2004 से बकाया किराए का भुगतान करने और वाद लंबित रहने के दौरान हर महीने 13,500 रुपये का किराया और रखरखाव शुल्क का भुगतान करने का निर्देश देने की मांग

की गई। विद्वान सिविल न्यायाधीश ने इस आवेदन को खारिज कर दिया जिसके विरुद्ध वादी ने विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील की जिसे अपील न्यायालय ने भी खारिज कर दिया था।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि निचले दोनों न्यायालयों ने वादी को उस संपत्ति का किराया/उपयोगकर्ता शुल्क प्राप्त करने के उसके अधिकार से वंचित करने हेतु प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तावित विक्रय समझौते पर भरोसा करने में गलती की, जिसका वह वैध स्वामी था और जो प्रतिवादियों के अवैध कब्जे में था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि कथित "विक्रय का समझौता" एक कोरे कागज पर था और पंजीकृत नहीं था और इसमें कोई स्टाम्प शुल्क नहीं था। विक्रय हेतु इस समझौते को रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 और 49, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 क और भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुच्छेद 23 क के साथ पठित धारा 35 के प्रावधानों को देखते हुए निचले न्यायालयों द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह तर्क कि उपरोक्त अधिनियमों के प्रावधानों को देखते हुए समझौते पर विचार नहीं किया जा सकता, याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाया जा रहा था और इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

4. अपील न्यायालय के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि अपील न्यायालय ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 क के आधार पर आदेश 39 नियम 10 सि.प्र.स. के तहत किराया प्राप्त करने के याचिकाकर्ता के अधिकार से इंकार कर दिया था, जिसमें कहा गया था कि इस धारा 53 क के प्रावधानों के लाभ कथित समझौते सह रसीद को देखते हुए प्रतिवादी द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं, जहां यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि प्रतिवादी का कब्जा बना रहेगा। इस प्रकार, प्रत्यर्थी के कब्जे को अनधिकृत नहीं कहा जा सकता और दस्तावेज़ को अधिक नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जब विशिष्ट प्रदर्शन हेतु वाद लंबित था। इस प्रकार, प्रत्यर्थी की याचिका कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 क का मुद्दा निचले न्यायालय द्वारा नहीं उठाया गया था या उस पर विचार नहीं किया गया था, निराधार है।

5. यह स्थापित विधि है कि कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। यहां तक कि न्यायालय भी कानून की अवहेलना नहीं कर सकते और क़ानूनी प्रावधानों के विपरीत आदेश पारित नहीं कर सकते। संशोधित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 उप-धारा 1क में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं:

> "1क संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) की धारा 53क के प्रयोजनार्थ किसी भी अचल संपत्ति के अंतरण की संविदा वाले दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किए जाएंगे यदि वे रजिस्ट्रीकरण और अन्य संबंधित विधियों (संशोधन) अधिनियम, 2001 के प्रारंभ में या उसके बाद निष्पादित किए

गए हैं और यदि ऐसे दस्तावेज ऐसे प्रारंभ में या उसके बाद रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं, तो उनका उक्त धारा 53क के उद्देश्यों हेतु कोई प्रभाव नहीं होगा।

6. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53क का लाभ देने हेतु, जिस दस्तावेज़ पर भरोसा किया गया है वह एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज़ होना चाहिए। किसी भी अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज को न्यायालय द्वारा नहीं जांचा जा सकता और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के साथ पठित धारा 17 (1क) को देखते हुए उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता या उसे साक्ष्य में नहीं लिया जा सकता। इस प्रकार, धारा 53क का लाभ प्रत्यर्थी को तभी दिया जा सकता था जब विक्रय सह रसीद का कथित समझौता रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 (1) क के प्रावधानों को संतुष्ट करता हो। भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 न्यायालयों को एक अनिवार्य निर्देश देती है कि शुल्क के साथ लगाए गए किसी भी दस्तावेज को किसी भी उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा या किसी भी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा उस पर तब तक कार्रवाई नहीं की जाएगी जब तक कि ऐसे दस्तावेज पर विधिवत मुहर नहीं लगाई जाती। अनुच्छेद 23 क में प्रावधान है कि जहां संविदा धारा 53 क के तहत किसी भी केंद्र शासित प्रदेश में आंशिक प्रदर्शन की प्रकृति में अचल संपत्ति के अंतरण हेतु है, वह एक अंतरण विलेख के रूप में शुल्क का 90 प्रतिशत आकर्षित करता है। इस प्रकार, भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 में दिए

गए अधिनियम के आदेश के विपरीत, कथित विक्रय के समझौते पर न्यायालय द्वारा किसी भी उद्देश्य हेतु विचार नहीं किया जा सकता।

7. जिस विक्रय समझौते पर भरोसा किया गया है वह प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में नहीं है, बल्कि प्रत्यर्थी सं. 2 के पक्ष में है और निम्नानुसार हैः-

> "मैं, अरुण कुमार टंडन पुत्र स्वर्गीय जे.सी. टंडन निवासी- सेक्टर 10, फ़रीदाबाद (हरियाणा) को 25 अप्रैल 2004 को वसंत कुंज, नई दिल्ली स्थित अपने फ्लैट नंबर डी-3/3473 के विक्रय के एवज में अग्रिम के रूप में 4,50,000 रुपये (चार लाख पचास हजार रुपये नकद) प्राप्त हुए। 30,50,000/- रुपये की शेष राशि का भुगतान दिनांक 25.05.04 को 4,50,000/- रुपये की तीन किश्तों में और 25.06.04 को 11,00,000/- रुपये की तीन किश्तों में किया जाएगा। विक्रय राशि की शेष राशि का भुगतान विक्रय के समय किया जाएगा, राशि का भुगतान विक्रय विलेख के समय किया जाएगा जो 25.08.04 को या उससे पहले होगा और वह कब्जा बनाए रखेगा।"

8. भले ही इस विक्रय समझौते पर विचार किया जाए, लेकिन विक्रय समझौते में यह नहीं कहा गया है कि भू-स्वामी को कोई किराया देय नहीं होगा, भले ही कोई विक्रय विलेख कभी निष्पादित न किया गया हो। यह केवल अधिकार बनाए रखने की बात करता है और यह नहीं बताता कि भू-स्वामी का किराया प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो गया है।

9. यह निर्विवाद है कि अभिधृति(किरायेदारी) 11 महीने की अवधि के लिए एक लिखित साधन द्वारा बनाई गई थी। अभिधृति(किरायेदारी) समय के प्रवाह से

समाप्त हो गई। यह प्रत्यर्थी का मामला नहीं है कि 11 महीने की अवधि समाप्त होने के बाद भी अभिधृति(किरायेदारी) जारी रही। प्रत्यर्थी का मामला यह है कि अभिधृति(किरायेदारी) उसके अधिकारों में विलय हो गई। विलय द्वारा पट्टे का पर्यवसान संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 (घ) के तहत प्रदान किया गया है, जो इस प्रकार हैः-

> "111 **पट्टे का पर्यवसान**-अचल संपत्ति का पट्टा
> निर्धारित करता है -
> (घ) यदि पूरी संपत्ति में पट्टेदार और पट्टेदार के हित एक ही समय में एक ही व्यक्ति में एक ही अधिकार में निहित हो जाते हैं।"

यह स्पष्ट है कि विलयन तब होता है जब किरायेदार स्वयं अभिधारित(किराये पर दिए गए) परिसर का पूर्ण स्वामी बन जाता है, जो मामला यहाँ नहीं है।

10. इसलिए, मैं मानता हूं कि विचारण न्यायालय किसी भी परिस्थिति में प्रत्यर्थी को संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53 क का लाभ नहीं दे सकता, भले ही प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा दायर विशिष्ट प्रदर्शन हेतु वाद लंबित हो। विशिष्ट प्रदर्शन हेतु वाद लंबित होने से नीचे दिए गए न्यायलय को प्रत्यर्थी द्वारा आधार बनाए गए दस्तावेज और दस्तावेज के प्रभाव को देखने से वर्जित नहीं किया जा सकता था क्या इस तरह के दस्तावेज को न्यायालय द्वारा किसी भी उद्देश्य के लिए देखा जा सकता है। जब दस्तावेज़ पर ही गौर नहीं किया जा सका, तो इस दस्तावेज़ के आधार पर प्रत्यर्थी को लाभ देने का सवाल ही नहीं उठेगा। निचले

न्यायालय के लिए कानून के बारे में जागरूक होना और कानून को लागू करना अनिवार्य था। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 (1) क और भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 क़ानून पुस्तिका में बहुत अधिक उपलब्ध थीं। ऐसा कोई तर्क नहीं है कि इन धाराओं को न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया था। इस देश के किसी भी अन्य नागरिक की तरह, न्यायाधीशों को भी कानून का ज्ञान होना चाहिए और उन्हें सही कानून लागू करने चाहिए। धारा 53क का लाभ प्रत्यर्थियों को नहीं दिया जा सकता था जिस पर गौर नहीं किया जा सकता। यदि इस दस्तावेज़ की जाँच-पड़ताल नहीं की जाती, तो पट्टा समझौते की समाप्ति के बाद भी प्रत्यर्थी अनधिकृत रूप से कब्जे में बना रहेगा और प्रत्यर्थी याचिकाकर्ता को वाद लंबित रहने के दौरान किराए और मासिक किराए के अवशिष्ट का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी था, जैसा कि पट्टा समझौते से पता चलता है।

11. प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता द्वारा यह अभिवाक किया गया कि लिखित बयान में प्रत्यर्थियों द्वारा यह स्वीकार नहीं किया गया था कि सहमत किराया 9,500/- रुपये और 4,000/- रुपये था। मेरा मानना है कि यह याचिका विफल होनी चाहिए। इस बात से कोई इंकार नहीं किया जा सकता कि लिखित पट्टा समझौते के आधार पर प्रत्यर्थियों ने परिसर पर कब्जा कर लिया था, जहां किराए पर पक्षों द्वारा विशेष रूप से सहमति व्यक्त की गई थी और रखरखाव शुल्क का भी विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। इस तथ्य के बावजूद कि लिखित बयान में

प्रत्यर्थियों ने स्वयं को किरायेदार के रूप में स्वीकार नहीं किया, न्यायालय को पट्टे के समझौते पर भरोसा करना होगा जिसके आधार पर प्रत्यर्थियों का कब्ज़ा अधिकार में आया था, और आदेश 39 नियम 10 सि.प्र.स. के तहत आवेदन को अनुमति देनी चाहिए थी जिसमें प्रत्यर्थियों को कम से कम किराए का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था जो पट्टे के समझौते में आरक्षित था।

12. इसलिए मैं इस याचिका को अनुमति देता हूं। आदेश 39 नियम 10 सि.प्र.स. के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन की अनुमति दी जाती है। निचले न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया है। प्रत्यर्थियों को 30 दिनों के भीतर अब तक के किराए का पूरा अवशिष्ट जमा करना होगा और यदि किराया जमा नहीं किया जाता, तो निचले न्यायालय को कानून के अनुसार कार्य करने और प्रत्यर्थियों के बचाव को रद्द करने की स्वतंत्रता होगी।

02 मार्च, 2010 **न्या.शिव नारायण धींगरा**

'एए '

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*